IMPACT FACTOR 5.397 (SJIF USA)
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 4, October-December, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971

स्वतंत्र भारत का प्रारंभिक संकट : एकता की चुनौतियाँ और राष्ट्र-निर्माण की जटिलताएँ (1947-1964)

Deepak Kumar
LDC
Forbesganj College, Forbesganj
Araria, Bihar

सारांश (Abstract)

स्वतंत्र भारत के प्रारंभिक काल (1947–1964) में राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया अनेक गंभीर संकटों से गुजरी। विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न साम्प्रदायिक हिंसा, बड़े पैमाने पर विस्थापन और शरणार्थी समस्या ने सामाजिक एकता को गहरा आघात पहुँचाया। साथ ही, 562 रियासतों का एकीकरण, क्षेत्रीय अखंडता की स्थापना और भाषाई आधार पर राज्य पुनर्गठन जैसी चुनौतियाँ राष्ट्रीय एकीकरण के समक्ष प्रमुख बाधाएँ बनीं। इस अवधि में नेतृत्व ने धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और समावेशी विकास के सिद्धांतों को अपनाकर इन संकटों का सामना किया। वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में रियासतों का विलय और जवाहरलाल नेहरू की नीतियों के माध्यम से संविधान निर्माण तथा योजना आयोग की स्थापना ने संस्थागत ढाँचा प्रदान किया।

भाषाई पुनर्गठन ने विविधता को प्रशासनिक रूप से समाहित करने का प्रयास किया, परंतु इससे क्षेत्रीय असंतोष भी उत्पन्न हुआ। यह कालखंड राष्ट्र–निर्माण की जटिलताओं को दर्शाता है, जहाँ एकता की आवश्यकता और विविधता की वास्तविकता के बीच संतुलन स्थापित करना चुनौतीपूर्ण रहा। आर्थिक पिछड़ापन, सामाजिक असमानता और बाहरी खतरों ने भी प्रक्रिया को प्रभावित किया। कुल मिलाकर, इस अवधि की उपलब्धियाँ संघीय ढाँचे की मजबूती और लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना ने भारत को एक स्थिर राष्ट्र के रूप में स्थापित किया, यद्यपि कुछ मुद्दे (जैसे कश्मीर और भाषाई तनाव) दीर्घकालिक बने रहे। यह विश्लेषण दर्शाता है कि राष्ट्र–निर्माण एक सतत और बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसमें राजनीतिक इच्छाशक्ति और संस्थागत ढाँचे की भूमिका निर्णायक रहती है।

मुख्य शब्द : राष्ट्र–निर्माण, राष्ट्रीय एकता, विभाजन, रियासत एकीकरण, राज्य पुनर्गठन, नेहरू युग।

परिचय (Introduction)

स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद भारत ने अभूतपूर्व संकटों का सामना किया, जो राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया को गहन चुनौतियों से भर देते थे। 1947 में विभाजन ने न केवल भौगोलिक विभाजन किया, बल्कि सामाजिक संरचना में गहरे विदीर्ण उत्पन्न किए, जिससे साम्प्रदायिक हिंसा और जनसंख्या विस्थापन की समस्या उत्पन्न हुई। इस संदर्भ में, राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना सबसे प्राथमिक चुनौती बन गई। स्वतंत्र भारत के सामने तीन प्रमुख चुनौतियाँ उभरीं, पहली, विविधताओं से युक्त समाज को एकीकृत राष्ट्र में बदलनाय दूसरी, रियासतों का राजनीतिक एकीकरण सुनिश्चित करनाय और तीसरी, प्रशासनिक तथा भाषाई पुनर्गठन के माध्यम से स्थिर शासन व्यवस्था स्थापित करना। 1947–1964 की अवधि नेहरू युग के रूप में जानी जाती है, जिसमें लोकतांत्रिक मूल्यों, धर्मनिरपेक्षता और नियोजित विकास को राष्ट्र–निर्माण का आधार बनाया गया। इस दौरान संविधान सभा द्वारा अपनाया गया संविधान (1950) ने संघीय ढाँचे के साथ विविधता को स्थान दिया। रियासतों के एकीकरण में वल्लभभाई पटेल की रणनीति प्रभावी सिद्ध हुई, जिसने क्षेत्रीय अखंडता को मजबूत किया। भाषाई आधार पर राज्य पुनर्गठन (1956) ने क्षेत्रीय पहचान को मान्यता दी, परंतु इससे कुछ स्थानों पर तनाव भी बढ़ा।

इस काल में आर्थिक विकास, सामाजिक सुधार और विदेश नीति के माध्यम से राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया को गति दी गई। यद्यपि प्रगति हुई, लेकिन सामाजिक–आर्थिक असमानता, जातिगत विभेद और बाहरी चुनौतियाँ बनी रहीं। यह अवधि दर्शाती है कि राष्ट्र–निर्माण केवल राजनीतिक एकीकरण तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक समावेशन और संस्थागत स्थिरता पर निर्भर है। वर्तमान संदर्भ में भी इन प्रारंभिक चुनौतियों का अध्ययन भारत की एकता की मजबूती को समझने के लिए आवश्यक है।

1. विभाजन और उसके तात्कालिक संकट (Partition and Immediate Crises)

भारत के विभाजन (1947) ने स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही अभूतपूर्व तात्कालिक संकट उत्पन्न किए, जो राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया को गंभीर चुनौती प्रदान करते थे। ब्रिटिश भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप दो स्वतंत्र देश भारत और पाकिस्तान का उदय हुआ, लेकिन इस प्रक्रिया में कोई अनिवार्य जनसंख्या स्थानांतरण की योजना नहीं थी। फिर भी, धार्मिक आधार पर बड़े पैमाने पर स्वैच्छिक और जबरन विस्थापन हुआ, जिसमें अनुमानित 1.4 से 1.5 करोड़ लोग प्रभावित हुए। पश्चिमी और पूर्वी सीमाओं (मुख्यतः पंजाब और बंगाल) पर साम्प्रदायिक हिंसा व्यापक रूप से फैली, जिसके परिणामस्वरूप मौतों की संख्या 5 लाख से 20 लाख तक अनुमानित है, जिसमें विभिन्न स्रोतों के अनुसार न्यूनतम 2 लाख और अधिकतम 10 लाख तक के आंकड़े प्रचलित हैं।

यह हिंसा मुख्य रूप से धार्मिक आधार पर संगठित थी, जिसमें सामूहिक नरसंहार, लूटपाट और महिलाओं के विरुद्ध यौन

हिंसा शामिल थी। प्रशासनिक ढाँचा अचानक कमजोर हो गया, क्योंकि ब्रिटिश सेना की वापसी और भारतीय सेना का विभाजन हिंसा नियंत्रण में बाधक बना। परिणामस्वरूप, शरणार्थी समस्या ने तत्काल राहत, पुनर्वास और स्वास्थ्य प्रबंधन की आवश्यकता उत्पन्न की। भारत सरकार को लाखों शरणार्थियों के लिए आवास, भोजन, चिकित्सा और रोजगार की व्यवस्था करनी पड़ी, जो संसाधनों पर भारी दबाव डालता था। सामाजिक स्तर पर, विभाजन ने साम्प्रदायिक विश्वास को गहरा आघात पहुँचाया। हिंदू, सिख और मुस्लिम समुदायों के बीच अविश्वास बढ़ा, जिससे सामाजिक एकता की नींव हिल गई। संपत्ति विनिमय की प्रक्रिया जटिल थी, क्योंकि पाकिस्तान से आए शरणार्थियों की संपत्ति भारत में और भारत से गए लोगों की संपत्ति पाकिस्तान में छूट गई। इसने आर्थिक असमानता और पुनर्वास की चुनौतियाँ बढ़ाईं।

राजनीतिक दृष्टि से, नेहरू और पटेल ने धर्मनिरपेक्षता को मजबूत करने पर जोर दिया। संविधान सभा में बहसों के माध्यम से भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया। 1950 में लियाकत–नेहरू समझौता हुआ, जिसने अल्पसंख्यक सुरक्षा और संपत्ति अधिकारों पर सहमति बनाई। शरणार्थी पुनर्वास के लिए मंत्रालय स्थापित किए गए और विभिन्न योजनाएँ चलाई गईं, जैसे दिल्ली में कालोनी निर्माण और ग्रामीण क्षेत्रों में बसावट।

हालांकि, इन प्रयासों के बावजूद संकट के दीर्घकालिक प्रभाव बने रहे। साम्प्रदायिक तनाव ने राजनीतिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा दिया और राष्ट्रीय एकीकरण में बाधा उत्पन्न की। विभाजन ने ''दो–राष्ट्र सिद्धांत'' को चुनौती दी, लेकिन भारत ने बहुलवादी राष्ट्रवाद को अपनाकर सामाजिक सद्भाव की दिशा में कदम उठाया। कुल मिलाकर, विभाजन के तात्कालिक संकट ने राष्ट्र–निर्माण को परीक्षा में डाला, जहाँ संस्थागत ढाँचे और राजनीतिक इच्छाशक्ति ने स्थिरता प्रदान की, यद्यपि पूर्ण समाधान लंबे समय तक अपूर्ण रहा। यह अवधि दर्शाती है कि विभाजन केवल भौगोलिक नहीं, बल्कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी राष्ट्र की एकता को प्रभावित करने वाला था।

2. रियासतों का एकीकरण : क्षेत्रीय अखंडता की चुनौती (Integration of Princely States)

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में 562 रियासतें मौजूद थीं, जो ब्रिटिश पैरामाउंटसी के अंत के साथ स्वतंत्र हो गईं। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 ने इन रियासतों को भारत या पाकिस्तान में शामिल होने या स्वतंत्र रहने का विकल्प दिया, जिसने क्षेत्रीय अखंडता की स्थापना को प्रमुख चुनौती बना दिया। अधिकांश रियासतें छोटी थीं, लेकिन कुछ (जैसे हैदराबाद, जूनागढ़, कश्मीर) बड़े क्षेत्र और जनसंख्या वाली थीं, जिनके निर्णय ने राष्ट्रीय एकीकरण को प्रभावित किया। वल्लभभाई पटेल (गृह मंत्री) और वी.पी. मेनन (राज्य विभाग के सचिव) ने इस प्रक्रिया का नेतृत्व किया। उन्होंने ''इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन'' (विलय पत्र) तैयार किया, जिसमें रक्षा, विदेश मामले और संचार को केंद्र को सौंपने की शर्त थी। 15 अगस्त 1947 तक अधिकांश रियासतों ने यह पत्र हस्ताक्षरित कर दिया, लेकिन कुछ ने देरी या विरोध किया। पटेल की रणनीति में कूटनीति, दबाव और आवश्यकता पड़ने पर सैन्य कार्रवाई शामिल थी।

जूनागढ़ में नवाब ने पाकिस्तान में शामिल होने का निर्णय लिया, लेकिन स्थानीय जनमत और भौगोलिक स्थिति के कारण भारत ने विरोध किया। 1947–48 में जनमत–संग्रह कराया गया, जिसमें भारत में विलय का निर्णय हुआ। हैदराबाद के निजाम ने स्वतंत्र रहने की इच्छा जताई, लेकिन आंतरिक अशांति और रजाकारों की गतिविधियों के कारण 1948 में श्ऑपरेशन पोलोश चलाया गया, जिसके परिणामस्वरूप हैदराबाद भारत में शामिल हुआ। कश्मीर में महाराजा हरि सिंह ने प्रारंभ में स्वतंत्र रहने का प्रयास किया, लेकिन पाकिस्तानी कबायली हमले के बाद 26 अक्टूबर 1947 को भारत में विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए। इससे प्रथम भारत–पाक युद्ध हुआ और क्षेत्रीय विवाद उत्पन्न हुआ। 1949 तक लगभग सभी रियासतें एकीकृत हो गईं। इस प्रक्रिया में विलय के बाद प्रशासनिक एकीकरण, विशेषाधिकारों का समापन और केंद्र–राज्य संबंधों का पुनर्गठन शामिल था। पटेल ने रियासतों के शासकों को सम्मानजनक स्थिति दी, जैसे प्रिवी पर्स, जिसने विरोध को कम किया।

यह एकीकरण क्षेत्रीय अखंडता के लिए निर्णायक था, क्योंकि बिना इसके भारत का भौगोलिक विखंडन संभव था। चुनौतियाँ राजनीतिक, प्रशासनिक और सैन्य स्तर पर थीं, कुछ रियासतों में स्थानीय विरोध, सीमा विवाद और बाहरी हस्तक्षेप। सफलता के बावजूद, कश्मीर का मुद्दा अनसुलझा रहा और अनुच्छेद 370 (अब निरस्त) इसी का परिणाम बना। रियासतों का एकीकरण राष्ट्र–निर्माण की एक प्रमुख उपलब्धि थी, जिसने संघीय ढाँचे की नींव मजबूत की। यह प्रक्रिया दर्शाती है कि कूटनीति और निर्णायक नेतृत्व से जटिल चुनौतियों का समाधान संभव है, यद्यपि कुछ दीर्घकालिक जटिलताएँ बनी रहीं। यह कालखंड भारत की एकता को बनाए रखने में संस्थागत और राजनीतिक प्रयासों की प्रभावशीलता को प्रमाणित करता है।

3. भाषाई पुनर्गठन : विविधता और एकता (Linguistic Reorganization)

भारत की स्वतंत्रता के बाद भाषाई आधार पर राज्य पुनर्गठन एक प्रमुख चुनौती बन गया, जो विविधता को प्रशासनिक ढाँचे में समाहित करने और राष्ट्रीय एकता बनाए रखने के बीच संतुलन की आवश्यकता को दर्शाता है। कांग्रेस ने 1920 से ही भाषाई प्रांतों की मांग का समर्थन किया था, लेकिन स्वतंत्रता के बाद विभाजन के भय से इसे टाला गया। 1952 में पोट्टी श्रीरामुलु की अनशन मृत्यु ने आंध्र राज्य की मांग को तेज किया, जिसके परिणामस्वरूप 1953 में आंध्र राज्य का गठन हुआ। इस घटना ने अन्य भाषाई समूहों के लिए पूर्व उदाहरण स्थापित किया। सरकार ने 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग (States Reorganisation Commission & SRC) गठित किया, जिसकी अध्यक्षता फजल अली ने की और सदस्यों में के.एम. पणिक्कर तथा एच.एन. कुंजरू शामिल थे। आयोग

ने 1955 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें भाषा को राज्य पुनर्गठन का महत्वपूर्ण आधार माना गया, लेकिन श्एक भाषा–एक राज्यश के सिद्धांत को अस्वीकार किया। आयोग ने राष्ट्रीय एकता, सुरक्षा, प्रशासनिक सुविधा, आर्थिक व्यवहार्यता और राष्ट्रीय विकास योजनाओं को प्राथमिकता दी। रिपोर्ट में भाषाई समरूपता को प्रशासनिक दक्षता के लिए अनुकूल माना, लेकिन सांस्कृतिक या भाषाई होमलैंडश की अवधारणा को खारिज किया। आयोग ने 16 राज्यों और कुछ केंद्रशासित प्रदेशों की सिफारिश की, जिसमें क्षेत्रीय समायोजन, विलय और विभाजन शामिल थे।

1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित हुआ, जिसने 14 राज्यों और 6 केंद्रशासित प्रदेशों की व्यवस्था की। इस अधिनियम ने संविधान की मूल चार–स्तरीय राज्य वर्गीकरण (Part A-B-C-D) को समाप्त कर सभी राज्यों को समान दर्जा प्रदान किया। प्रमुख परिवर्तनों में बॉम्बे राज्य (बाद में 1960 में महाराष्ट्र और गुजरात में विभाजित), केरल, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, पंजाब आदि शामिल थे। अधिनियम ने भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए संवैधानिक सुरक्षा (अनुच्छेद 347, 350) को मजबूत किया और प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा का प्रावधान सुनिश्चित किया। यह पुनर्गठन विविधता को एकता में बदलने का व्यावहारिक प्रयास था। भाषाई आधार ने प्रशासनिक दक्षता बढ़ाई, क्षेत्रीय पहचान को मान्यता दी और स्थानीय स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत किया। हालांकि, इससे कुछ चुनौतियाँ भी उभरीं क्षेत्रीय असंतोष, भाषाई अल्पसंख्यकों की समस्या और कुछ मामलों में अतिरिक्त विभाजन की मांग। उदाहरणस्वरूप, बॉम्बे राज्य का द्विभाषी स्वरूप दोनों भाषाई समूहों से विरोध का कारण बना। पंजाब में सिख समुदाय की मांगों ने बाद में 1966 में विभाजन को जन्म दिया।

कुल मिलाकर, भाषाई पुनर्गठन ने ''एकता में विविधता'' के सिद्धांत को व्यावहारिक रूप दिया। यह राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण कदम था, जिसने संघीय ढाँचे को लचीला बनाया और राष्ट्रीय एकीकरण को मजबूत किया। यद्यपि प्रक्रिया में कुछ तनाव उत्पन्न हुए, लेकिन यह दर्शाता है कि विविधता को दबाने के बजाय संस्थागत समायोजन से एकता प्राप्त की जा सकती है। यह अवधि भारत की संघीय व्यवस्था की परिपक्वता को प्रमाणित करती है, जहाँ भाषाई पहचान को राष्ट्रीय हित के साथ संतुलित किया गया।

4. अन्य प्रमुख संकट और राष्ट्र–निर्माण की रणनीतियाँ (Other Crises and Strategies)

1947–1964 की अवधि में भारत ने विभाजन और रियासत एकीकरण के अलावा कई अन्य संकटों का सामना किया, जिनमें आर्थिक पिछड़ापन, सामाजिक असमानता, खाद्य सुरक्षा और बाहरी खतरों से संबंधित मुद्दे प्रमुख थे। इन संकटों का सामना करने के लिए नेहरू युग में लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, नियोजित विकास और सामाजिक सुधारों पर आधारित रणनीतियाँ अपनाई गईं। आर्थिक संकट सबसे गंभीर था। औपनिवेशिक काल से विरासत में मिली गरीबी, औद्योगिक पिछड़ापन और खाद्य कमी ने विकास को बाधित किया। नेहरू ने मिश्रित अर्थव्यवस्था और नियोजित विकास को अपनाया। 1950 में योजना आयोग की स्थापना हुई और प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56) में कृषि, सिंचाई और सामुदायिक विकास पर जोर दिया गया। द्वितीय योजना (1956–61) में महालनोबिस मॉडल के आधार पर भारी उद्योगों और आयात प्रतिस्थापन पर फोकस किया गया, जिससे सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार हुआ। प्रमुख परियोजनाओं जैसे भाखड़ा–नंगल, हिराकुड और दामोदर घाटी निगम ने बुनियादी ढाँचा मजबूत किया। इस रणनीति ने औद्योगिक आधार तैयार किया, लेकिन उपभोक्ता वस्तुओं की कमी और विदेशी मुद्रा संकट उत्पन्न हुए।

सामाजिक संकटों में जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता और लैंगिक असमानता प्रमुख थे। संविधान (1950) ने मौलिक अधिकारों और राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के माध्यम से समानता सुनिश्चित की। हिंदू कोड बिल (1955–56) ने विवाह, उत्तराधिकार और संपत्ति में सुधार किए। भूमि सुधारों ने जमींदारी प्रथा समाप्त की और भूमि सीमा निर्धारित की, यद्यपि कार्यान्वयन असमान रहा। शिक्षा और स्वास्थ्य में निवेश बढ़ाया गया, लेकिन संसाधन सीमित होने से प्रगति धीमी रही। बाहरी संकटों में 1962 का चीन युद्ध प्रमुख था, जिसने रक्षा और विदेश नीति की कमजोरियों को उजागर किया। नेहरू की गुटनिरपेक्ष नीति (NAM) ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की स्थिति मजबूत की और आंतरिक संसाधनों पर निर्भरता कम की। रणनीतियों में पटेल और नेहरू की भूमिका पूरक थ, पटेल ने एकीकरण और प्रशासनिक स्थिरता पर जोर दिया, जबकि नेहरू ने वैचारिक ढाँचा (धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, लोकतंत्र) प्रदान किया। संस्थागत विकास जैसे चुनाव आयोग, न्यायपालिका और सार्वजनिक क्षेत्र ने स्थिरता दी।

ये रणनीतियाँ राष्ट्र–निर्माण में सफल रहीं, क्योंकि उन्होंने विविध समाज में समावेशिता सुनिश्चित की और आर्थिक आधार तैयार किया। हालांकि, कुछ सीमाएँ रहीं, आर्थिक विकास धीमा रहा, सामाजिक असमानता बनी रही और 1962 का युद्ध ने आत्मविश्वास को प्रभावित किया। कुल मिलाकर, यह अवधि दर्शाती है कि बहुआयामी संकटों के बावजूद राजनीतिक इच्छाशक्ति, संस्थागत ढाँचा और समावेशी नीतियों से राष्ट्र–निर्माण संभव है। यह कालखंड आधुनिक भारत की नींव रखने वाला था, जिसकी उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ आज भी प्रासंगिक हैं।

5. मूल्यांकन और निष्कर्ष (Evaluation and Conclusion)

1947 से 1964 तक की अवधि स्वतंत्र भारत के राष्ट्र–निर्माण की सबसे निर्णायक और चुनौतीपूर्ण कालखंड रही। इस दौरान विभाजन की हिंसा, रियासतों का एकीकरण, भाषाई पुनर्गठन, आर्थिक पिछड़ापन और सामाजिक असमानता जैसी बहुआयामी संकटों का सामना किया गया। इन चुनौतियों के बावजूद, नेहरू–पटेल नेतृत्व में अपनाई गई रणनीतियों ने भारत को एक स्थिर, लोकतांत्रिक और

संघीय राष्ट्र के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की। राष्ट्र–निर्माण की प्रमुख उपलब्धियाँ स्पष्ट हैं। रियासतों का एकीकरण और राज्य पुनर्गठन ने क्षेत्रीय अखंडता सुनिश्चित की और भारत को भौगोलिक विखंडन से बचाया। संविधान (1950) ने धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और मौलिक अधिकारों को संस्थागत आधार प्रदान किया। भाषाई पुनर्गठन ने विविधता को प्रशासनिक ढाँचे में समाहित किया, जिससे क्षेत्रीय पहचान और राष्ट्रीय एकता के बीच संतुलन स्थापित हुआ। नियोजित विकास और सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार ने आर्थिक आधार तैयार किया, जबकि गुटनिरपेक्ष नीति ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की स्वतंत्र पहचान मजबूत की। इन प्रयासों से भारत ने श्एकता में विविधताश के सिद्धांत को व्यावहारिक रूप दिया, जो बहुलवादी समाज के लिए एक दुर्लभ मॉडल साबित हुआ।

इस अवधि की कुछ जटिलताएँ और सीमाएँ भी स्पष्ट हैं। विभाजन के साम्प्रदायिक घाव पूर्ण रूप से नहीं भर सके और साम्प्रदायिक तनाव समय–समय पर उभरते रहे। कश्मीर का मुद्दा अनसुलझा रहा, जिसने भारत–पाकिस्तान संबंधों को स्थायी रूप से प्रभावित किया। भाषाई पुनर्गठन ने कुछ क्षेत्रों में अतिरिक्त विभाजन की मांगों को जन्म दिया। आर्थिक विकास धीमा रहा, जिससे गरीबी और असमानता बनी रही। 1962 का चीन युद्ध ने रक्षा और विदेश नीति की कमजोरियों को उजागर किया तथा नेहरू युग के प्रति आलोचना बढ़ाई। ये सीमाएँ दर्शाती हैं कि राष्ट्र–निर्माण एक सतत और जटिल प्रक्रिया है, जिसमें पूर्ण सफलता तत्काल संभव नहीं होती। फिर भी, इस कालखंड की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि भारत ने लोकतंत्र को बनाए रखा और संस्थागत ढाँचे को मजबूत किया। चुनाव, न्यायपालिका, संघीय व्यवस्था और सार्वजनिक नीतियों ने विविध समाज में स्थिरता प्रदान की। वर्तमान संदर्भ में भी यह अवधि प्रासंगिक है। आज के भारत में क्षेत्रीय असंतोष, सामाजिक असमानता और बाहरी चुनौतियाँ मौजूद हैं, लेकिन प्रारंभिक वर्षों की नींव ने इनका सामना करने की क्षमता प्रदान की है। राष्ट्र–निर्माण में राजनीतिक इच्छाशक्ति, संस्थागत ढाँचा और समावेशी दृष्टिकोण की भूमिका निर्णायक रहती है। यह कालखंड सिद्ध करता है कि विविधता को दबाने के बजाय उसे संस्थागत रूप से समाहित करने से ही दीर्घकालिक एकता संभव है। अंततः, 1947–1964 की अवधि ने आधुनिक भारत की नींव रखी, जिसकी मजबूती और कमजोरियाँ दोनों आज भी राष्ट्र की प्रगति को आकार दे रही हैं।

संदर्भ सूची :

1. चंद्र, विपिन, (2024), ''आधुनिक भारत का इतिहास'' ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, पृ. स. 110–111।
2. सिंह मंजू डॉ., (2013) ''आधुनिक भारत का इतिहास, एजुकेशनल पब्लिशर्स एण्ड डिस्टब्यूटर, पृ. स. 44–45।
3. पाण्डेय, धनपति, (2017) ''आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, मोतिलाल बनारसी, पृ. स. 76–77।
4. ग्रोवर, बी. एल., मेहता, अलका (2020) ''आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन'' पृ. स. 145–147।
5. गुहा, रामचंद्र, (2023), ''भारत : गांधी के बाद'', हार्परकॉलिंस, नई दिल्ली, पृ. स. 200–202।
6. मेनन, वी. पी., (2022), ''भारतीय रियासतों का एकीकरण'', ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, पृ. स. 80–82।
7. गोपाल, सरवपल्ली, (2021), ''जवाहरलाल नेहरू : एक जीवनी (खंड 2)'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. स. 32–34।
8. नेहरू, जवाहरलाल, (2020), ''भारत की खोज'', ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. स. 45–47।
9. पटेल, वल्लभभाई, (2019), ''एक भारत के लिए : सरदार पटेल के भाषण'', प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. स. 90–95।
10. सिंह, खुशवंत, (2023), ''ट्रेन टू पाकिस्तान'', पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, पृ. स. 50–55।
11. बुटालिया, उर्वशी, (2022), ''मौन की दूसरी तरफ'', पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, पृ. स. 110–112।
12. अग्रवाल, सुनील, (2024), ''1947 के बाद का भारत'', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. स. 130–132।
13. कुदैसिया, गुरचरण। (2021), ''विभाजन और उत्तर–औपनिवेशिक दक्षिण एशिया'', रूटलेज, नई दिल्ली, पृ. स. 140–142।